हृदय से देखो

प्यारी साधना,
प्रेम।
आंखें तो अंधी हैं—हृदय से ही देखना होगा।
इसलिए आंखों का विश्वास न करो।
हृदय का विश्वास करो।
और स्मरण रखो उसके द्वारा देखना।
और, तब तुम कोई अविश्वसनीय वस्तुओं के बारे में जान पाओगी।
और जब तक कोई अविश्वसीनय को नहीं जानता, उसने कुछ जाना ही नहीं।

— ओशो
मौन-संगीत

ध्यानमय जीवन शैली

श्वास : सबसे गहरा मंत्र

श्वास भीतर जाती है, इसका आपके प्राणों में पूरा बोध हो कि श्वास भीतर जा रही है। श्वास बाहर जाती है, इसका भी आपके प्राणों में पूरा बोध हो कि श्वास बाहर जा रही है। और आप पाएंगे कि एक गहन शांति उतर आई है। यदि आप श्वास को भीतर जाते हुए और बाहर जाते हुए, भीतर जाते हुए और बाहर जाते हुए देख सकें, तो यह अभी तक खोजे गए मंत्रों में से सबसे गहरा मंत्र है।

श्वास हमेशा वर्तमान में है। हम अतीत में श्वास नहीं ले सकते और न ही हम भविष्य में श्वास ले सकते हैं। श्वास लेना हमेशा इसी क्षण में है। लेकिन हम अतीत के बारे में सोच सकते हैं और हम भविष्य के बारे में सोच सकते हैं। शरीर तो वर्तमान में रहता है, लेकिन मन अतीत और भविष्य के बीच झूलता रहता है। और शरीर और मन के बीच में एक विभाजन हो जाता है। शरीर वर्तमान में रहता है और मन कभी भी वर्तमान में नहीं रहता। और वे कभी मिलते नहीं, वे कभी एक-दूसरे के सामने नहीं आते। और उसी विभाजन के कारण, विषाद, चिंता और तनाव पैदा होते हैं। हर एक तनावग्रस्त है, वह तनाव ही चिंता है। मन को वर्तमान में लाना है, क्योंकि वर्तमान के अतिरिक्त दूसरा कोई समय है ही नहीं।

— ओशो
ध्यान-विज्ञान

A. K. AUTOMATICS
(Manufacturers of Precision Machine, Turned Components and Fasteners)
HISSAR ROAD, ROHTAK-124001 (HARYANA) INDIA
Tel: 01262-248516, 248885, 248999, 265892-5 Fax: 01262-248223 Email: akmicro@ndf.vsnl.net.in

संपादकीय

सृजन की भावदशा

ओशो एक बहुत प्यारी कहानी कहते हैं :

जापान में एक राजा एक ज़ेन सद्गुरु के दर्शन के लिए उसके आश्रम में आया। द्वार पर एक व्यक्ति खड़ा लकड़ियां काट रहा था। राजा ने उससे कहा, 'क्या मैं आपसे पूछ सकता हूं कि आप कौन हैं?'

उसने कहा, 'मैं कौन हूं? आप देख सकते हैं—मैं एक लकड़हारा हूं।'

राजा ने कहा, 'यह सच है, मैं देख सकता हूं, लेकिन मैं आपके गुरु से मिलने आया हूं।'

उसने कहा, 'मेरे गुरु? मेरा कोई गुरु नहीं है।'

राजा ने सोचा कि यह कोई पागल आदमी लगता है। फिर भी बात को पूरा करने के लिए बोला, 'क्या यह ज़ेन आश्रम है?'

उस आदमी ने उत्तर दिया, 'शायद'

यह सुनकर राजा आगे बढ़ गया। आगे घने जंगल के बीच एक घर में पहुंचा और उसने उसी लकड़हारे को वहां देखा, उसने ज़ेन भिक्षु का चोगा पहन रखा है, ध्यान की मुद्रा में बैठा है और बहुत सुंदर और दीप्तिमान लग रहा है। राजा ने उसके चेहरे की ओर देखा, और पूछा, 'यह सब क्या हो रहा है? क्या आपका कोई जुड़वां भाई है?'

उसने कहा, 'शायद।'

राजा बोला, 'द्वार के निकट लकड़ियां काटने वाला कौन था।'

उसने कहा, 'वह जो लकड़ी काट रहा था, वह लक्कड़हारा था। उस लक्कड़हारे के बारे में क्या बात करनी? मैं गुरु हूं।'

यह सुनकर राजा बहुत पशोपेश में पड़ गया। ज़ेन गुरु बोला, 'परेशान मत होओ। जब मैं लकड़ी काट रहा हूं तो लक्कड़हारा हूं—तब मैं किसी और चीज़ के लिए जगह नहीं छोड़ता। और जब मैं गुरु होता हूं तो मैं गुरु होता हूं। आप दो व्यक्तियों से नहीं मिले, आप केवल एक ही व्यक्ति से मिले हैं जो सदा समग्र (Total) है। अगली बार शायद आप मुझे तालाब में मछलियां पकड़ते देखें तो तब मैं मछुआरा हूं। मैं जो कुछ भी करता हूं, वही कृत्य हो जाता हूं—अपनी समग्रता में।'

यह बोध कथा जापान के एक ज़ेन सद्गुरु की है, लेकिन इस देश में भी कुछ ऐसे अनूठे सद्गुरु हुए हैं जो सद्गुरु थे लेकिन पूरी तन्मयता के साथ अपने-अपने कृत्यों में संल्लीन हो जाते थे। कबीर जुलाहे थे। गोरा कुम्हार थे—मिट्टी के पात्रों की रचना में मस्त रहते थे। रैदास चमार थे—चमड़े के जूते बनाते थे। और ये तीनों महान सद्गुरु थे। इन्हें सद्गुरु होते हुए ऐसे छोटे और निम्न कोटि के समझे जाने वाले कार्य करने में कोई संकोच नहीं था। उनके शिष्यों को कभी-कभी अटपटा लगता था कि हमारे ये सद्गुरु किन कामों में लगे हैं, लेकिन सद्गुरुओं को कोई परेशानी न थी, उन्हें तो अपने कार्य में भगवत्ता के दर्शन होते थे। कबीर जो चदरिया बुनते थे, उनके लिए चदरिया खरीदने वाले सभी ग्राहक राम थे, भगवान थे।

आजकल कोई छोटा-मोटा गुरु, सद्गुरु भी नहीं, बल्कि कुछ प्रवचनों को पढ़कर भाषण देते-देते स्थापित हो गया गुरु, ऐसे सामान्य कार्य करने से घबराता है; उसे तो बस मंच चाहिए, चरण छूने वाले लोग चाहिए, वह कुछ और करने में अपनी तौहीन समझता है। थोड़ी-सी प्रतिष्ठा मिली और व्यक्ति उस प्रतिष्ठा की अदृश्य जंजीरों में जकड़ा जाता है। वह विशिष्ट होने का व्यवहार करने लगता है और सामान्य व्यक्तियों से दूरी बनाने में लग जाता है, ताकि वह सामान्य व्यक्तियों में उन जैसा सामान्य न दिखने लगे। उसे प्रतिष्ठा का झूठा सिक्का मिल जाता है, लेकिन सहजता के आनंद से वंचित हो जाता है।

यह जीवन जीने का गैर-सृजनात्मक ढंग है। ओशो ने अपने संन्यासियों को सृजनात्मक जीवन-शैली दी है। कुछ दिनों पहले एक संन्यासी स्वामी पूर्णम् धर्मशाला नव-उद्घाटित केन्द्र ओशो निसर्ग से गदगद वापस लौटे और मुझे कहने लगे, 'पहली बार कहीं जाकर मुझे कम्यून जैसी फीलिंग मिली। हम सब वहां मिलकर ध्यान के अलावा सब्जी काटते, बर्तन मांजते, सफाई करते और बहुत थोड़े से समय के भीतर हम एक-दूसरे के प्रति बहुत आत्मीयता अनुभव करने लगे। कोई छोटा-बड़ा नहीं, कोई स्पेशल नहीं। कोई औपचारिकता नहीं। मुझे बड़ा अच्छा लगा। मुझे इसकी बहुत जरूरत थी।'

एक बार व्यक्ति प्रेम और आत्मीयता का आनंद अनुभव कर ले—और यह अनुभव केवल सामान्य लोगों को होता है, विशिष्ट लोगों को नहीं—तो फिर प्रतिष्ठा के झूठे सिक्के उसे नहीं लुभाते, अहंकार के खेल ज़हरीले लगते हैं।

मीरा ने भी गाया है : म्हाने चाकर राखो जी! यह चाकरी कोई दासता नहीं है, यह तो प्रभु की अनुकंपा है।

ओशो का संन्यासी, जिसे ओशो एक नए मनुष्य के रूप में देखना चाहते हैं, सर्वथा सृजनात्मक है। ओशो उसे अनुप्रेरित करते हुए कहते हैं; जैसी दुनिया तुम्हें मिली है, उसे और सुंदर बनाए बिना इस दुनिया से विदा मत होना। यह बहुत सुखद समाचार है कि ओशो के अनेक शिष्यों में यह संदेश उनके प्राणों के अंतरंग में, हृदय की गहराइयों में उतर गया है—और वे सृजनात्मक हो गए हैं। उनके सृजन के फूल यहां-वहां खिलते दिखाई पड़ रहे हैं।

— स्वामी चैतन्य कीर्ति